श्री अमृत लाल नागर, जिन्हें साहित्य अकादेमी आज अपना सर्वोच्च सम्मान, महत्तर सदस्यता, प्रदान कर रही है, हिन्दी के महत्त्वपूर्ण लेखकों में से एक हैं। आप कथाकार, नाटककार और निबंधकार भी हैं।

नागरजी का जन्म 17 अगस्त 1916 को आगरा में एक गुजराती परिवार में हुआ जो तेरह पीढ़ियों से उत्तर प्रदेश में बस गया था। युवा अमृतलाल को अपना रास्ता बनाने के लिए ज़िन्दगी में संघर्ष करना पड़ा। कुछ समय फिल्म उद्योग में रहने और आकाशवाणी की नौकरी करने के बाद आपने निश्चय किया कि वे अपने को सर्जनात्मक साहित्य के लिए अर्पित कर देंगे और ऐसा किया भी। इसी का परिणाम है कि अब तक आपकी लगभग साठ कृतियाँ प्रकाशित हो चुकी हैं।

अमृतलाल उस समय मुश्किल से तेरह वर्ष के रहे होंगे जब साइमन कमीशन के विरुद्ध अहिंसक प्रदर्शनकारियों पर सरकार द्वारा किये गये अत्याचारों को लेकर उनकी प्रतिक्रिया एक कविता के रूप में फूट पड़ी। आपकी संवेदना जागृत हुई और आप जल्दी ही 'कथा' की तरफ़ मुड़े, जो आपका वास्तविक क्षेत्र था। आपने अपनी पहली कहानी 'प्रायश्चित्त' पन्द्रह वर्ष की उम्र में लिखी और उन्नीस वर्ष की उम्र में पहला कहानी-संग्रह **वाटिका** नाम से प्रकाशित हुआ। समाज की हास्यप्रद स्थितियों और विसंगतियों ने आपको **चकल्लस** साप्ताहिक के प्रकाशन की प्रेरणा दी। हालाँकि इसकी ज़िन्दगी थोड़े दिनों की थी, किन्तु अपने सहज वाग्वैदग्ध्य और तीखी व्यंग्योक्तियों के कारण नागरजी को काफ़ी ख्याति मिली। इस विधा ने आपको प्रभावित किया और आपने **नवाबी मसनद, सेठ बांकेमल, कृपया दायें चलिए** और **हम फ़िदाये लखनऊ** जैसी हास्य-व्यंग्यात्मक कृतियों की सर्जना की।

नागरजी ने स्वाध्याय से पढ़ा। आपने मोपासाँ, फ्लाबेयर और चेखॉव जैसे पश्चिमी कथाकारों की कृतियाँ पढ़ीं और उनमें से कुछ का हिन्दी अनुवाद भी किया। बाद में आपने भारतीय लेखकों में विष्णु भट्ट गोडसे के **माझा प्रवास** और क.मा. मुंशी के तीन नाटकों का हिन्दी अनुवाद किया। इतिहास, पुरातत्व और साहित्य से आपको गहरा प्रेम है और अपने चारों तरफ़ की ज़िन्दगी ने, जैसा आपने पाया, आपको आंदोलित किया है। बंगाल के भयंकर अकाल ने आपको झकझोर कर रख दिया था और आपने अपना पहला उपन्यास लिखा **महाकाल** (1947), जिसमें भूख और मनुष्य के भ्रष्ट आचरण की यंत्रणादायी कथा है। तब तक आप कथाकार के रूप में प्रतिष्ठित हो चुके थे और बाद के बारह उपन्यासों ने इस प्रतिष्ठा में अभिवृद्धि ही की।

**बूँद और समुद्र** (1956) विशेषकर सामाजिक यथार्थ पर अपनी पकड़ और मध्यवर्ग के आंदोलित मनोभावों के चित्रण के लिए सराहा गया। **अमृत और विष** (1966) में सामाजिक परिदृश्य और विस्तार पाता दिखायी पड़ता है। लेखक ने इसे समाज का 'सप्तआयामी आईना' कहा है। अपनी कल्पनाशीलता के प्रसार, जीवन के यथार्थपरक चित्रण और ओजपूर्ण कथा के लिए यह कृति हिन्दी कथा साहित्य को बहुमूल्य योगदान मानी गयी। यह वर्ष 1967 के साहित्य अकादेमी पुरस्कार और 1970 के सोवियत लैण्ड नेहरू पुरस्कार से सम्मानित हुई। आपके बाद के उपन्यासों में **नाच्यो बहुत गोपाल** (1976) एक ब्राह्मण औरत की कथा है, जो एक भंगी से शादी करती है। यह प्रकृतवाद के निकट है और सामाजिक संस्थाओं की सड़न को रेशे-रेशे उधेड़ती है।

नागरजी के ऐतिहासिक उपन्यास इतिहास की व्याख्या सामाजिक प्रासंगिकता के परिप्रेक्ष्य में करते हैं। **सुहाग के नूपुर** इलंगो अडिगल के **शिलप्पदिकारम्** पर आधारित है जो दो हज़ार वर्ष पूर्व की कथा है। इसमें एक ओर दाम्पत्य निष्ठा और दूसरी ओर एक वेश्या का प्रेमोन्माद जो सामाजिक मान्यता के लिए तड़प रहा है - इन के परस्पर विरोधी दावों का हृदयगाही चित्रण है। **एकदा नैमिसारण्ये** में तीसरी शताब्दी के कालखण्ड का चित्रण है। इसमें एक संस्कृति-पद्धति की कल्पना की गयी है, जो प्रतीयमान सामाजिक और धार्मिक विघटनकारी शक्तियों को नियंत्रित कर सके। **मानस का हंस** और **खंजन नयन** सोलहवीं शताब्दी के कालखण्ड में तुलसी और सूर के जीवन का कल्पनाशील चित्रण करते हैं। **सात घूँघट वाला मुखड़ा** अठारहवीं शताब्दी के तनावों को उदघाटित करता है, जिसमें बेगम समरू की कथा है, जो आधा इतिहास और आधी कल्पना है। **शतरंज के मोहरे** में उन्नीसवीं शताब्दी के लखनऊ के शक्ति और गौरव के ह्रास की कहानी है और सबसे ताजे उपन्यास **करवट** (1985) में हमारे अपने समय की ज़िन्दगी के विभिन्न पक्षों को अंकित किया गया है। इन सभी उपन्यासों में लेखक की कल्पनाशीलता का प्रसार देश और काल के विपुल विस्तार पर फैला दिखायी देता है और इतिहास तथा कथा दोनों से रस ग्रहण करता है।

नागरजी की कहानियाँ कई खण्डों मे प्रकाशित हुई हैं। इनमें हाज़िर जवाबी तथा वैविध्य है। ये अपने कथा-प्रभाव के साथ मध्यमवर्गीय शहरी जीवन को प्रस्तुत करती हैं। आपने लगभग तीस नाटक और प्रहसन लिखे हैं, जो सफलतापूर्वक मंचित और प्रसारित हो चुके हैं। हिन्दी रंगमंच को आपके योगदान के लिए उत्तर प्रदेश संगीत नाटक अकादेमी ने आपको सम्मानित किया है। आपकी अन्य कृतियों में 1857 की क्रांति के संबंध में सर्वेक्षण **गदर के फूल**, वेश्याओं से साक्षात्कार **ये कोठेवालियाँ**, साहित्यकारों के संस्मरण **जिनके साथ जिया, चैतन्य महाप्रभु** की जीवनी, आत्मपरक लेखों का संकलन **टुकड़े टुकड़े दास्तान**, साहित्यिक और ललित निबंधों का संकलन **साहित्य और संस्कृति** आदि हैं। बाल-साहित्य के क्षेत्र में भी नागरजी का विशिष्ट योगदान है।

सामाजिक विवेक और मानवीय दृष्टि वाले रचनाकार, रूप और शैली के प्रयोगकर्ता, विभिन्न बोलियों तथा भाषाओं पर अधिकार रखने वाले, अनेक भारतीय तथा विदेशी भाषाओं में अनूदित, कई सम्मानों तथा पुरस्कारों से प्रतिष्ठित और भारत के राष्ट्रपति द्वारा 'पद्मभूषण' (1981) से सम्मानित नागरजी सचमुच ही एक बड़े लेखक हैं।

उपन्यासकार और लेखक के रूप में अपने उत्कर्ष के नाते साहित्य अकादेमी श्री अमृतलाल नागर को अपना सर्वोच्च सम्मान, महत्तर सदस्यता, प्रदान करती है।

Sri Amritlal Nagar, on whom the Sahitya Akademi is conferring its highest honour today, is one of the major writers in Hindi—a novelist, a short story writer, a playwright and an essayist.

Born on 17 August 1916 at Agra in a Gujarati family settled in Uttar Pradesh for thirteen generations, the young Amritlal had to struggle his way up in life. After a stint at the film industry and a career at All India Radio, he decided to devote himself solely to creative literature, and has, as a result, some sixty books to his credit to date.

The boy Amrit, hardly thirteen, burst into a poem at Government atrocities on non-violent demonstrators against the Simon Commission. His sensibility awakened, he soon turned to fiction, his real forte, and wrote his first story, 'Prayaschitta', at the age of fifteen, and at nineteen published his first collection of short stories, *Vatika*. The comic and the incongruous inspired him to found *Chakallas*, a short-lived weekly; its sketches dipped in vibrant wit or withering sarcasm shot him into fame. The man and the genre seemed to suit each other, and he gave us such scintillating works as *Nawabi masnad*, *Seth Bankemal*, *Kripaya dayen chaliye* and *Ham fida-ye-Lucknow*.

Self-schooled, the young Nagar read the western masters and translated some—Maupassant, Flaubert and Chekhov.

Self-schooled, the young Nagar read the western masters and translated some—Maupassant, Flaubert and Chekhov.
Nearer home, he rendered Vishnu Bhatt Godse's *Majha pravas* and three plays of K. M. Munshi into Hindi. History, archaeology, literature were his passion. Life, as he saw it around, moved him. The terrible famine of Bengal stirred him, and he wrote *Mahakal* (1947), his first sustained novel, a harrowing tale of hunger and man's debasement. His reputation was now well-established and the twelve novels that followed reinforced it.

When *Boond aur samudra* (1956) came, it was acclaimed for its grasp of social reality—in particular, its depiction of the seething ferment of the middle classes. This social vision enlarged further in *Amrit aur vish* (1966), described by the author as 'a seven-dimensional mirror of society'. For its sweep of imagination, realistic portrayal of life, and narrative virility, it was hailed as an outstanding contribution to Hindi fiction, and won the Sahitya Akademi Award for 1967 and the Soviet Land Nehru Award for 1970. One of his later novels, *Nachyo bahut Gopal* (1976), the story of a brahman woman marrying a scavenger approximates to naturalism, exposing the rot in our social institutions.

Sri Nagar's historical novels, interpreting history in terms of its social relevance, are of a piece with his other fiction. *Suhag ke nupur*, based on Ilango Adigal's *Silappadikaram* and set two thousand years ago, is a moving story of the conflicting claims of conjugal fidelity and a courtesan's tortured passion crying for recognition. *Ekada Naimisaranye*, cast in the third century, works out a pattern of culture to hold together seemingly disruptive forces, social and religious. *Manas ka hans* and *Khanjan nayan* apprehend imaginatively the lives of Tulsi and Sur and recreate the sixteenth century ethos. *Sat ghunghatwala mukhda*, the story of Begam Samaru, half-history, half-legend, reveals the tensions of the eighteenth century, *Shatranj ke mohare*, set in the nineteenth century, brings out the decay of Lucknow's power and glory. And the most recent *Karwat* (1985) covers life in its various facets in our own times. In all these novels, the writer's imagination spans vast reaches of time and space and seizes the essence of history and fiction both.

Sri Nagar's short stories, published in several volumes, display wit and variety, and present, with telling effect, aspects of the middle class urban life. His plays and skits, some thirty in number, have been successfully staged or broadcast, and the Uttar Pradesh Sangeet Natak Akademi honoured him for his contribution to the Hindi stage. Among his miscellaneous writings, *Gadar ke phool* is a survey of the 1857 revolution; *Ye kothewalian*, a revealing study of prostitutes; *Jin ke sath jiya*, reminiscences of men of letters; *Chaitanya Mahaprabhu*, a biography; *Tukade tukade dastan*, a volume of personal essays; *Sahitya aur sanskriti*, essays on literature and culture. Besides, there is his impressive contribution to children's literature.

A writer with a social conscience and humanistic vision, an experimenter with form and style, a master of language with the resources of many dialects at his command, an author translated widely at home and abroad, recipient of several awards and distinctions, and honoured by the President of India with 'Padma-bhushan' (1981), Sri Nagar is, indeed, a writer of great merit.

For his eminence as a novelist and writer the Sahitya Akademi confers its highest honour, the Fellowship, on Sri Amritlal Nagar.

# साहित्य अकादेमी महत्तर सदस्यता
# 1989
## वक्तव्य
## श्री अमृतलाल नागर

देश के वरेण्य साहित्यिक महानुभावों के समकक्ष बैठकर राष्ट्रीय साहित्य अकादेमी से यह महोच्च सम्मान प्राप्त करना बड़े गौरव का विषय है। आनन्द की मिठास से मुँह और मन दोनों ही बँध गये हैं, शब्दहीनता की स्थिति में आ गये हैं। वैसे कविगुरु कालिदास ने मिठास को बहुत सराहा है। वह कहते हैं कि जिस मुखड़े की बनावट मधुर हो उसे किसी और सजावट या सिंगार की ज़रूरत नहीं होती। महाकवि मीर ने भी जवानी में यह मिठास देखी और कहा कि 'खुद जवानी है जवानी का सिंगार, सादगी गहना है इस सिन के लिये।' इन साहित्य देवताओं की बात करने का दुःसाहस तो स्वप्न में भी नहीं कर सकता, हाँ, मेरा लखनवी दिल चेहरा के सलोनेपन को भी कम महत्त्व नहीं दे पाता, बग़ैर नमक के मिठास का मज़ा ही क्या। सर्जक मन की रूपमण्डना में दोनों ही काम आते हैं। अस्तु।

सृजनधर्मी व्यक्ति का समूह मन भी उसके व्यक्ति मानस से ऐसे एकाकार हो जाता है कि अपने पराये का भाव ही नहीं रह जाता। पण्डित लोग कहते हैं कि 'कला सुन्दर होती है और सौन्दर्य अविभाज्य।' वैसे भी मैं अपनी पीढ़ी या उससे दस-पाँच वर्ष आगे-पीछे के लोगों के सृजनात्मक अहम् में एक समान प्रभाव निश्चित रूप से पाता हूँ। कई सदियों के बाद चेतन-अचेतन में तरह-तरह से परिपक्व हमारा देश मानस नये सिरे से जाग रहा था। सन अठारह सौ सत्तावन ई. का सिपाही विद्रोह सहसा जन विप्लव का रूप धारण कर गया, इसका अनोखा प्रभाव हमारे जन-मन को आमूल-चूल हिला गया। पराजय की कुण्ठा से रह-रह कर उत्तप्त होने वाला भारतवासी अंग्रेज़ी शासन और अंग्रेज़ी भाषा के प्रभाव से एक नयी चेतना भी पा रहा था जिसके कारण भारत में सुधारवादी लहर चली और इसी के साथ ही साथ अपने राजनीतिक अधिकारों का होश भी जाग उठा था। बीसवीं सदी के प्रथम दशक में बंगाल के स्वदेशी आन्दोलन तथा क्रान्तिकारी आतंकवाद के सिद्धांत ने एक नयी करवट ली। श्री अरविन्द आदि विचारक आतंकवाद को सही रास्ता न मानते हुए भी अंग्रेज़ी शासन को निश्चिन्त न बैठने देने के लिये ही आतंकवाद का सहारा लेना उपयोगी मानते थे। बीस वर्ष बाद शचीन्द्रनाथ सान्याल, योगेश चटर्जी और राम प्रसाद बिस्मिल जैसे लोगों की दृष्टि भी अपने पूर्ववर्ती विचारकों से भिन्न नहीं थी। आतंकवाद केवल गोरों और गोराशाही को अपने बमों या गोलियों का शिकार बनाकर सदियों से सोये हुये गुलाम देशमानस को मुक्ति के लिये क्रांतिपथ पर ला रहा था। असहयोग आन्दोलन ने इस दिशा में हमारे प्रबुद्ध जन मानस को जैसे उठाया था, वह भी भारतीय साहित्य से स्पष्ट हो चुका है। उत्तर हो या दक्षिण, पूर्व हो या पश्चिम, भारत की किसी भी क्षेत्रीय भाषा के साहित्य को पढ़ जाइये तो राष्ट्र के मानस परिवर्तन के रूप लगभग एक जैसे ही हमें देखने को मिल जाते हैं। पुरानी जड़ हो चुकी रूढ़ियों और नये विचारों में तीखी कशमकश तब भी चल रही थी। शुद्धि और तबलीग का जोर एक तरफ़ और ख़िलाफ़त असहयोग आन्दोलनों में हिन्दू-मुसलमान भाई-भाई का नारा दूसरी तरफ़ तेज़ी से आगे बढ़ रहा था। तपस्या, त्याग, बलिदान, ऊँचे आदर्शों के साये में हमारा होश पनप रहा था। संयोग से दो विशेषताएँ मुझे अपने होश की घुट्टी में ही मिली—अपनी दादी से आम बच्चों की तरह कहानियाँ मैंने भी खूब सुनीं लेकिन उससे भी अधिक मैंने सन् 1857 के जनविप्लव की अनेकों बातें, घटनाएँ, व्यक्तिगत अनुभव आदि सुनने के अवसर अधिक पाये। हमारे घर के सामने एक विशाल पार्क था जो कम्पनी बाग़ या विक्टोरिया पार्क कहलाता था वहाँ सम्राज्ञी विक्टोरिया की एक मूर्ति भी थी। सुनता था कि सत्तावनी विद्रोह से पहले वहाँ बड़े-बड़े सेठों और जौहरियों की आलीशान हवेलियाँ, सर्राफा बाज़ार और लखनऊ के प्रसिद्ध वाजपेयी ब्राह्मणों की बस्ती थी। गदर में सर हेनरी लॉरेन्स के आदेश से वह क्षेत्र पूरी तरह से उजाड़ दिया गया।

नवाबी ज़माने में लखनऊ बाग़ों का शहर कहा जाता था। अंग्रेज़ों ने जो महल्ले उजाड़े उस जगह घास उगवाकर उसे बाग़ का नाम दे दिया। गदर के कठिन दिनों का दुःख-सुख भोगे हुए तब के जवान और मेरे समय के बूढ़े लोग तब तक काफ़ी संख्या में जीवित थे। पुराना ज़माना, गली या शहर में हो जाने वाली घटना जब स्त्री-पुरुषों से महीनों जबान घिसाई करा सकती थी, तब यह तो क्रांति के दिनों की मुक्तभोगी बातें थी। इन्हीं से प्रेरित होकर मैंने बाद में अवध के गाँवों में घूम-घूमकर पुराने लोगों से गदर की कहानियाँ, उस समय की कविताएँ, लोकगीत आदि सुने और **गदर के फूल** पुस्तक में उन्हें संकलित कर दिया। ऐसे ही गदर से सम्बंधित एक दुर्लभ मराठी पुस्तक विष्णुभट गोडसे बरसईकर कृत '**माझा प्रवास**' का '**आँखों देखा गदर**' के नाम से हिन्दी में अनुवाद भी किया। पढ़ने के अतिरिक्त शहर के गली-महल्लों में घूम-घूमकर विभिन्न जातियों, वर्णों और वर्गों की तरह-तरह की जानकारियाँ प्राप्त कीं। अमीर-ग़रीब, हिन्दू-मुसलमान सबके रीति, रस्म-रिवाज, पुरानी-नयी बातें बहुत कुछ पूछने और जानने का शौक मुझे लगभग आरम्भ से ही लग गया था। मेरे सर्जक मन को इसीलिए कभी घटनाओं अथवा पात्र या पात्रियों की खोज के लिये बहुत भटकना नहीं पड़ा। बकौल शायर 'दिल के आईने में है तस्वीरे यार, जब जरा गर्दन उठायी देख ली'।

एक बार ऐसे ही प्रसंगवश नगर की भंगी अथवा मेहतर कहलाने वाली जाति ने मेरा ध्यान आकृष्ट किया, वह मेरे साहित्यिक जीवन का अनोखा अनुभव था। अपने नगर के बाद प्रदेश के दूसरे कुछ अन्य नगरों में भी इस अछूतों में अछूत कहलाने वाली जाति के लोगों में घूम-घूमकर यह जाना कि हमारे शहरों के भंगी कभी सवर्ण अथवा ऊँची जातियों के भी थे जो विजेताओं के द्वारा गुलाम बनाये जाकर इस हीनतम स्थिति में ला दिये गये। जीने की विवशता में उनका कितना मानस परिवर्तन हुआ, कितनी अपराध भावनाएँ बढ़ीं, यह देखकर मैं दंग रह गया। मेरा उपन्यास इसी दीवानी दौड़ का परिणाम है। अपने जन्मजात धार्मिक संस्कारों और आस्था के बावजूद मेरे साहित्यिक कर्म ने मुझे यह सिखलाया कि मानवता से बड़ा और कोई धर्म नहीं है इसीलिये धर्म मेरे लिये कभी साम्प्रदायिकता से जुड़ा हुआ नहीं रहा। मैं मनुष्य में विश्वास रखता हूँ और वस्तुतः मनुष्यता ही मेरा धर्म है।

यों तो मुझे भारत के अनेक भाषाओं के गणमान्य साहित्यिक व्यक्तियों से समय-समय पर भेंट करने और उनसे बहुत कुछ जानने के अवसर मिले, तमिल के प्रसिद्ध उपन्यास लेखक स्व. कृष्णमूर्ति कल्कि की बातों से मुझे '**शिलप्पदिकारम्** महाकाव्य' के अंग्रेज़ी अनुवाद पढ़ने की प्रेरणा प्राप्त हुई जिसके कथानक का स्वतंत्र आधार लेकर मैंने उपन्यास लिखा, किन्तु अपने साहित्यिक जीवन में सर्वाधिक ऋणी मैं स्वर्गीय शरतचन्द्र चट्टोपाध्याय और स्व. मुंशी प्रेमचन्द का हूँ। मेरे साहित्यिक जीवन के आरंभ में इन्हीं दो महापुरुषों ने मुझे स्वानुभव और यथार्थवाद का मन्त्र देकर मेरा साहित्यिक पथ प्रशस्त किया। साहित्य अकादेमी द्वारा प्राप्त इस सम्मान को उन्हीं का प्रसाद मानकर सादर-सविनय ग्रहण करता हूँ।